।। श्रीहरिः ।।

186

सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र

आदर्श चरितमाला, द्वितीय पुष्प

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

'सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र' आदर्श चरितमालाका दूसरा पुष्प है। श्रीहरिश्चन्द्रका चरित्र अनेकों ग्रन्थोंमें बिखरा हुआ है और वह बहुत ही आश्चर्यजनक है। पण्डितजीने प्रायः सभी ग्रन्थोंमें बहुत खोजकर संक्षेपमें यह चरित्र लिखा है। हरिश्चन्द्रकी सत्यवादिता और धर्मपर दृढ़ता आदर्श है। यह सत्य है कि जो अपने धर्म और सत्यपर दृढ़ रहता है, किसी भी परीक्षामें पीछे नहीं हटता, वह अन्तमें भगवान्‌की अपार कृपाको प्राप्त करके धन्यजीवन हो जाता है। हरिश्चन्द्रका जीवन इसका ज्वलन्त उदाहरण है। सत्यसे बहुत नीचे गिरे हुए हम भारतवासियोंको अपने पूर्वपुरुषके गौरवपूर्ण चरित्रसे लाभ उठाना चाहिये।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

(सम्पादक)

॥ श्रीहरि: ॥

सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र

[१]

परमात्मा ही सत्य है। वह नित्य एकरस और अविनाशी है। सत्यमें कभी परिवर्तन नहीं होता। झूठा अपनी बातें बदलता रहता है, परंतु सच्चा क्या बदल सकता है? उसके पास बदलनेके लिये है ही क्या? सत्यको समझें, सत्यको ढूँढ़ें और जो सत्य जान पड़े, उसपर दृढ़ हो जायँ। वह ज्ञान शास्त्रके आधारपर हो, संतोंकी वाणीके आधारपर हो, बस, उसपर दृढ़ हो जानेमात्रसे ही परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। दृढ़ता सत्यमें ही हो सकती है, असत्यमें नहीं। निष्ठा सत्यकी ही हो सकती है, असत्यकी नहीं। संसारका कोई भी पुरुष यह नियम नहीं ले सकता कि 'मैं झूठ ही बोलूँगा; झूठ ही करूँगा,' क्योंकि इस नियमका पालन त्रिकालमें नहीं हो सकता। यह अव्यवहार्य है। इसके विपरीत सत्य ही बोलनेका, सत्य ही करनेका नियम लिया जा सकता है और उसका पालन भी हो सकता है। इसीसे सत्य व्यवहार्य है और वह परमात्माका स्वरूप है। संसारके व्यवहारमें सत्यकी ओटमें ही असत्यको आश्रय मिलता है। अत: सत्य ही एक नित्य तत्त्व है और असत्य सर्वथा असत्य है। इस सत्य और असत्यके मिश्रणसे ही जगत्में दु:खोंकी सृष्टि हुई है। असत्यको छोड़कर सत्यके आश्रयसे ही परम सुख प्राप्त किया जा सकता है। उसमें पहले कुछ दु:ख भी पड़ सकते हैं; परंतु वे क्षणिक होंगे, अन्तमें सत्यकी स्थायी विजय होगी। संसारके इतिहासमें इसके अनेकों दृष्टान्त हैं और ऐसे दृष्टान्तोंमें सत्यनिष्ठ हरिश्चन्द्रका नाम प्रधानतासे लिया जा सकता है।

त्रेतायुगकी बात है। उन दिनों अयोध्याके राजा इक्ष्वाकुवंशी हरिश्चन्द्र थे। वे सम्पूर्ण पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट् थे, धर्ममें उनकी सच्ची निष्ठा थी और उनकी कीर्ति त्रिभुवनमें फैली हुई थी। सभीके मुँहपर हरिश्चन्द्रका नाम था, सभी उनके सद्व्यवहार, दानशीलता और सत्यनिष्ठाके कायल थे। देवता उनपर प्रसन्न थे, उनके शासनकालमें प्रजा संतुष्ट रहती थी, कभी दुर्भिक्ष नहीं पड़ता था। न कोई बीमार होता और न तो किसीकी अकालमृत्यु होती। सभी प्रजा भगवान्‌की उपासना करती थी और अपने-अपने धर्ममें तत्पर थी। सब धनी थे, शक्तिशाली थे, तपस्वी थे, परंतु अभिमान किसीमें नहीं था। राजा हरिश्चन्द्र सबको समान दृष्टिसे देखते, सबसे समान प्रेम करते। अनेकों यज्ञ-याग करते रहते। सबसे बड़ी बात उनमें यह थी कि वे सत्यसे कभी विचलित नहीं होते।

उनके पुरोहित थे महर्षि वसिष्ठ। वसिष्ठकी आज्ञासे ही उनका राज-काज चलता था और वे वसिष्ठका बड़ा सम्मान करते थे। एक बार राजसूय-यज्ञमें उन्होंने वसिष्ठको बड़ी दक्षिणा दी, इससे वसिष्ठकी ख्याति और भी बढ़ गयी। सब लोग उनका विशेष सम्मान करने लगे। यहाँतक कि इन्द्रकी सभामें भी उन्हें विशिष्ट आसन मिलता। वसिष्ठ सब प्रकारसे योग्य थे, परंतु इन्द्रकी सभामें हरिश्चन्द्रका पुरोहित होनेके कारण उनको और भी अधिक सम्मान मिलता। इन्द्रकी सभामें वसिष्ठके अतिरिक्त विश्वामित्र, नारद आदि ऋषि-महर्षि भी उपस्थित होते तथा देवताओंके साथ ब्रह्मलोकसे लेकर पातालतकके सम्बन्धमें वार्तालाप करते।

एक दिन इन्द्रकी सभा लगी हुई थी। वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषि एक ओर बैठे हुए थे। देवता, गन्धर्व, पितर,

यक्ष आदि भी यथास्थान विराजमान थे। इन्द्रके सामने ही यह चर्चा चल रही थी कि मर्त्यलोकमें आजकल सबसे बड़ा दानी, सबसे बड़ा धर्मात्मा और सबसे बड़ा सत्यवादी कौन है? सब लोग इस विषयपर विचार कर रहे थे। वसिष्ठने कहा—'संसारमें ऐसे पुरुष एकमात्र मेरे यजमान हरिश्चन्द्र ही हैं। उन्होंने राजसूय-यज्ञ किया है और उसमें इतनी दक्षिणा दी है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसा सत्यवादी, दाता, धार्मिक और प्रजाको प्रसन्न करनेवाला और कोई नहीं है। और तो क्या कहूँ, मैं हृदयसे कहता हूँ, सत्य कहता हूँ कि हरिश्चन्द्र-जैसा परम धार्मिक, प्रतापी, दाता तथा सत्यवादी राजा पृथ्वीपर न कोई हुआ है और न होगा।'* वसिष्ठकी बातोंका समर्थन यज्ञमें भाग पानेवाले देवताओंने किया।

भगवान्‌की लीला अद्‌भुत है। वे किसके द्वारा कब क्या करवाना चाहते हैं और कैसे करवाते हैं, इस बातको सिवा उनके और कोई नहीं जानता। उस समय भगवान्‌ने हरिश्चन्द्रकी महिमा, उनकी कीर्ति और उनकी सत्यनिष्ठाका आदर्श जगत्‌के सामने प्रकट कर देनेका विचार किया। बस, विचारमात्रका ही तो विलम्ब था, उन्होंने एक लीला रच ही दी। विश्वामित्रके हृदयमें ऐसे भाव उठने लगे कि हरिश्चन्द्रकी महिमा गाकर वसिष्ठने अपनी ही बड़ाई की है; क्योंकि जिसका यजमान इतना धार्मिक है, वह अवश्य ही बहुत बड़ा धार्मिक होगा। वसिष्ठने अपने महत्त्वका वर्णन करके हमलोगोंका तिरस्कार किया है और खास करके मेरा; क्योंकि मैं ही उनका पुराना

* हरिश्चन्द्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति।
सत्यवादी तथा दाता शूरः परमधार्मिकः॥

प्रतिद्वन्द्वी हूँ। प्रतियोगिताके कारण विश्वामित्रके मनमें ऐसे कारण सूझने लगे जो वसिष्ठके मनमें तनिक भी नहीं थे। हरिश्चन्द्रके सम्बन्धमें उन्होंने यही सोचा कि वह कबका धर्मात्मा है, तनिक-सी कठिनाई पड़नेपर ही वह धर्मसे, सत्यसे विचलित हो जायगा।

विश्वामित्रने भरी सभामें वसिष्ठका विरोध किया। उन्होंने कहा—'वसिष्ठने हरिश्चन्द्रकी झूठी महिमा गायी है। ये उसके यहाँ रहते हैं, उसका खाते हैं और उसीकी गाते हैं। मैं हरिश्चन्द्रको खूब जानता हूँ, वह कबसे धर्मात्मा हो गया? यदि धर्मात्माका स्वाँग भरता हो तो मैं उसे क्षणभरमें ही विचलित कर सकता हूँ। उसमें रखा ही क्या है?' देवताओंने कहा—'महाराज! आप क्या कह रहे हैं? क्या कभी महर्षि वसिष्ठकी वाणी भी असत्य हो सकती है? हम जानते हैं कि हरिश्चन्द्र बड़े ही धर्मात्मा हैं।' विश्वामित्रने कहा— 'वसिष्ठ सत्य नहीं कहते हैं, इस बातको मैं प्रमाणित कर दूँगा। ये बाजी लगाना चाहें तो लगा लें। यदि मेरी बात ठीक रही तो इनका आजतकके अध्ययन और तपस्यासे उपार्जित पुण्य नष्ट हो जाय और यदि इनकी बात ठीक रही तो मेरा पुण्य नष्ट हो जाय।' विश्वामित्रने अपने-आप यह प्रण कर लिया और वे इन्द्रसभासे उठकर चले आये। वसिष्ठ, इन्द्र आदि भी भगवान्‌की ऐसी इच्छा समझकर चुप हो रहे, वे सोचने लगे कि देखें भगवान् क्या लीला करते हैं!

एक दिन राजा हरिश्चन्द्र जंगलोंमें घूम रहे थे। उन्होंने एक स्थानपर देखा कि कोई तरुण तपस्विनी 'मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो'—इस प्रकार कहती हुई रो रही है। उन्होंने दूरसे ही कहा—'डरो मत, मेरे शासनकालमें यह

अन्याय कौन कर रहा है?' वे वेगसे उसकी ओर चल पड़े। उस समय विघ्नराजने अपने मनमें यह सोचा कि विश्वामित्र बड़ा ही भयंकर तप कर रहे हैं। ये उन विद्याओंको अपने वशमें करना चाहते हैं, जो बड़े-बड़े देवताओंको सिद्ध नहीं हैं। वे विद्याएँ इनकी तपस्याके तेजसे घबराकर दुःखी हो रही हैं। यदि मैं हरिश्चन्द्रके शरीरमें प्रवेश करके विश्वामित्रकी तपस्या रोक दूँ तो इन विद्याओंका काम बन सकता है। विघ्नराजने हरिश्चन्द्रके शरीरमें प्रवेश किया, हरिश्चन्द्र उस तपस्विनीके पास पहुँचे।

अब हरिश्चन्द्र आविष्ट हो गये थे। उन्होंने तपस्विनीके पास जाकर कहा—'कौन पापी अपने कपड़ेमें आग बाँध रहा है? मेरे शासनकालमें इतना साहस! अभी मेरे बाणोंके तीखे नोकोंसे उसका शरीर छिद जायगा, उसे लम्बी नींद (मौत)-का सहारा लेना पड़ेगा।' पास ही विश्वामित्र तपस्या कर रहे थे। हरिश्चन्द्रकी बात सुनकर वे क्रोधसे तिलमिला उठे। उन्हें क्रोधित देखकर वह तपस्विनी अन्तर्धान हो गयी और विश्वामित्रको देखते ही हरिश्चन्द्र थर-थर काँपने लगे। उनका आवेश उतर गया। विश्वामित्रने जब डाँटा कि 'दुरात्मन्! क्षणभर ठहर जा, अभी तुझे तेरे अभिमानका मजा चखाता हूँ।' तब तो हरिश्चन्द्र हक्का-बक्का हो गये। बड़ी नम्रतासे उन्होंने ऋषिके चरणोंका स्पर्श करके कहा—'महर्षे! मैंने अपराध नहीं किया है। यह तो मेरा धर्म है कि किसीको विपत्तिमें देखकर उसकी रक्षा करनेके लिये मैं दौड़ जाऊँ। राजाके दो ही धर्म हैं—दान और रक्षा। तीसरा केवल यही है कि इसके लिये समय आनेपर युद्ध किया जाय। आप मेरी अवस्था देखकर विचार कीजिये।'

विश्वामित्रने शान्त होकर कहा—'राजन्! पहले तुम यह बतलाओ कि किसको दान देना चाहिये, किसकी रक्षा करनी चाहिये और किससे युद्ध करना चाहिये?' हरिश्चन्द्रने कहा—'भगवन्! ब्राह्मण और दरिद्र दानके पात्र हैं, भयभीत रक्षाके योग्य हैं और जो इस काममें बाधा डाले, उससे युद्ध करना योग्य है।' विश्वामित्रने कहा—'राजन्! जैसे तुमने भयभीतकी रक्षा करनेका यत्न किया है, वैसे ही क्या मुझे दान भी दे सकते हो? मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, तुम मुझे दक्षिणा दो।' विश्वामित्रकी बात सुनकर हरिश्चन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—'भगवन्! आपको मैं क्या दूँ? निस्संदेह कहिये और ऐसा समझिये कि जो कुछ आपको चाहिये, वह मैं दे सकता हूँ। सोना, पुत्र, पत्नी, शरीर, प्राण, राज्य, नगर, सम्पत्ति—जो कुछ माँगिये, वह सब मैं देनेको तैयार हूँ।' हरिश्चन्द्रकी यह दानशीलता देखकर विश्वामित्र अवाक् हो गये। उनके मुँहसे सहसा कोई शब्द नहीं निकल सका। अपनेको सँभालकर उन्होंने कहा—'राजन्! जब मुझे आवश्यकता होगी, तब मैं तुमसे मागूँगा। अभी तुम अपनी राजधानीमें जाकर राजकाज देखो।' हरिश्चन्द्र वहाँसे चले आये।

हरिश्चन्द्रके जानेके बाद विश्वामित्र सोचने लगे कि इसी हरिश्चन्द्रके लिये इन्द्रकी सभामें मेरा और वसिष्ठका विवाद हुआ था। आज एकाएक मेरी तपस्यामें इसने विघ्न डाल दिया। मेरी तपस्यासे खिन्न होकर तपस्याकी अधिष्ठात्री देवी यदि रो रही थी तो रोती रहती। हरिश्चन्द्रको उससे क्या मतलब था। परन्तु एकाएक वह कूद पड़ा। मेरे सामने आकर भी उसने अपनेको दाता घोषित किया। अब उसके

दातापनको देखना चाहिये। देखें, वह कितने दिनोंतक अपने दातापनपर ठहरता है। विश्वामित्र हरिश्चन्द्रको नीचा दिखानेका उपाय सोचने लगे।

उन्होंने एक दानवको शूकरके समान बना दिया और उसे हरिश्चन्द्रकी राजधानीमें भेजा। वह भयंकर शूकर दारुण गर्जना करता हुआ अयोध्यानरेशके उपवनमें पहुँचा। बागवान डर गये और शूकर बगीचेमें जाकर निःशंकभावसे लता-वृक्षके कुंजों और पुष्पोंको नष्ट करने लगा। बहुतोंने उसपर शस्त्रप्रहार किये, परन्तु वह तनिक भी भयभीत नहीं हुआ; बल्कि वृक्षोंको खोद-खोदकर, उखाड़-उखाड़कर रौंदने लगा। जब वहाँके सैनिक किसी प्रकार शूकरको भगा न सके, तब वे कातर होकर महाराज हरिश्चन्द्रकी शरणमें गये। उन्हें कातर देखकर हरिश्चन्द्रने कहा—'भाई! तुमलोग क्यों इतना डर रहे हो? तुमपर कौन-सा भय छाया हुआ है? बताओ, किसकी मौत पास आ गयी है? वह कितना बड़ा है, कितना बली है, देवता है या दानव है, मैं अभी उसकी खबर लेता हूँ।'

बागवानोंने कहा—'प्रभो! न वह दैत्य है, न दानव है, वह तो एक बड़ा भारी शूकर है और हमारे बाण, पत्थर और लाठियोंसे वह तनिक भी नहीं डर रहा है, बल्कि हमलोगोंपर इतने जोरसे आक्रमण करता है कि हमारी हिम्मत उसके सामने ठहरनेकी नहीं होती।' बागवानोंकी बात सुनकर हरिश्चन्द्र स्वयं घोड़ेपर सवार हुए और उन्होंने सैनिकोंको अपने साथ चलनेकी आज्ञा दी। राजाने देखा कि सारा बगीचा नष्ट-भ्रष्ट हो गया है और वह शूकर वहीं घरघरा रहा है। उन्होंने निशाना लगाकर एक बाण छोड़ा, परन्तु

शूकरने अपनेको उससे बचा लिया। दूसरे बाणके समय वह बड़े वेगसे राजा हरिश्चन्द्रको लाँघकर भागा और हरिश्चन्द्रने उसका पीछा किया। वह क्षणभर राजाके सामने रहता और दूसरे ही क्षण लापता हो जाता। इस प्रकार वह राजाको एक घने जंगलमें ले गया। सेना पीछे छूट गयी। उस घोर जंगलमें हरिश्चन्द्र अकेले पड़ गये। थोड़ी देर बाद शूकर अन्तर्धान हो गया और राजा चिन्तामें पड़ गये।

दोपहरका समय था, बहुत दूरतक पीछा करनेके कारण हरिश्चन्द्र थक गये थे। कड़ी धूप थी, वे भूख-प्याससे व्याकुल हो गये थे। निर्जन वनमें रास्ता भूल गया, वे दीनके समान हो गये। उन्होंने सोचा, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, इस अज्ञात जंगलमें कौन मेरी सहायता करेगा? रास्ता मालूम नहीं, अब किस ओर चलना चाहिये। कुछ ही क्षण बाद उन्होंने देखा कि सामने ही एक निर्मल जलकी सुन्दर नदी बह रही है, उसके किनारे बड़े ही सुन्दर-सुन्दर वृक्ष हैं और वह विश्राम करनेके लिये बड़ा ही उपयुक्त स्थान है। वे घोड़ेसे उतर पड़े, उसे जल पिलाया और एक वृक्षमें बाँधकर उन्होंने स्वयं जलपान किया। विश्राम करनेके पश्चात् उन्होंने अपनी राजधानीमें जानेका विचार किया, परंतु जाते कैसे, किस ओर जाते, उन्हें दिशाभ्रम हो गया था।

इसी समय एक बूढ़े ब्राह्मणका रूप धारण करके महर्षि विश्वामित्र उनके पास आये। राजाने उन्हें नमस्कार किया। आशीर्वाद देनेके पश्चात् बूढ़े ब्राह्मणने कहा—'महाराज! इस बीहड़ वनमें आप कैसे पधारे? आप अकेले ही यहाँ क्या करना चाहते हैं? स्थिर होकर आप सब बातें सुनाइये।' राजाने सारी बातें सुनायीं और कहा कि मुझे अपनी राजधानीका

मार्ग नहीं मालूम है। आप मुझे रास्ता दिखा दें। मेरे बड़े भाग्यसे आपके दर्शन हुए हैं, नहीं तो मैं इस जंगलमें न जाने कहाँ-कहाँ भटकता फिरता? यदि आपको धनकी इच्छा हो, यदि आप यज्ञ करना चाहते हों तो अयोध्यामें आवें, मैं आपको बहुत-सा धन दूँगा।'

हरिश्चन्द्रकी बात सुनकर बूढ़े ब्राह्मणने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने हँसकर कहा—'राजन्! यह बड़ा ही पवित्र तीर्थ है। इसमें स्नान, तर्पण करनेसे बहुत बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। यह बड़ा ही सुन्दर समय है, पवित्र देश है और मैं दानके योग्य ब्राह्मण हूँ। इसलिये आप स्नान करके दान दीजिये। स्वायम्भुव मनुने कहा है कि पवित्र तीर्थोंमें जाकर जो स्नान नहीं करता, वह आत्मघाती है। आपके दानसे प्रसन्न होकर मैं आपको मार्ग दिखाऊँगा, राजधानीतक पहुँचा दूँगा और आपकी बड़ी सहायता करूँगा। हरिश्चन्द्रने मुनिकी कपटभरी वाणीपर विश्वास करके उस मायानदीमें स्नान किया। स्नान करते ही हरिश्चन्द्रकी बुद्धि बदल गयी, वे विश्वामित्रके पूर्णतः अधीन हो गये। हरिश्चन्द्रपर विश्वामित्रका जादू पूरा-पूरा चल गया।

राजाने कहा—'भगवन्! आपकी जो इच्छा हो माँग लें। गऊ, जमीन, सोना, हाथी, घोड़े जो कुछ भी चाहें आप माँग सकते हैं! ऐसी कोई वस्तु मेरे पास नहीं है, जिसे मैं आपको न दे सकूँ।' वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी विश्वामित्रने कहा—'राजन्! मैंने आपकी संसारमें बड़ी कीर्ति सुनी है। वसिष्ठने स्वयं कहा है कि हरिश्चन्द्रके समान दाता पृथ्वीपर दूसरा कोई नहीं है। उन्होंने तो यहाँतक कहा है कि वैसा दाता न हुआ है, न होगा। इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि

आप मेरे लड़केके विवाहके लिये पर्याप्त धन दें।' हरिश्चन्द्रने विवाहके लिये धन देना स्वीकार किया।

विश्वामित्रने अपनी माया फैलायी। दस वर्षकी सुन्दर कन्या और एक सुकुमार कुमार वहाँ प्रकट हो गये। विश्वामित्रने बतलाया 'आज ही इनकी विवाह–विधि सम्पन्न करनी है। जो विवाहमें सहायता करता है उसे राजसूय–यज्ञसे भी अधिक पुण्य प्राप्त होता है।' हरिश्चन्द्रने बिना कुछ सोचे–विचारे उन्हें धन देनेकी हामी भर ली। विश्वामित्र हरिश्चन्द्रको साथ लेकर आश्रमपर पहुँचे और विवाहकी तैयारी करनेका स्वाँग करने लगे।

हरिश्चन्द्रके सामने ही विश्वामित्र वर–वधूका पाणिग्रहण करा रहे थे। अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, विवाहमण्डप सजा हुआ था, मंगलाचार हो रहे थे और हरिश्चन्द्र मन्त्रमुग्धकी भाँति सब देख रहे थे। विवाहके अन्तमें विश्वामित्रने कहा—'राजन्! आप जो कुछ देना चाहते हैं, विवाहके इस पवित्र अवसरपर इसी यज्ञमण्डपमें वर–वधूको दे दीजिये।' हरिश्चन्द्रने कहा—'भगवन्! आप क्या चाहते हैं? आपकी जो अभिलाषा हो मुझे स्पष्ट कहिये। मैं अपनी शक्तिभर उठा न रखूँगा।' विश्वामित्रने अपनी मायासे हरिश्चन्द्रको काबूमें करके कहा—'राजन्! हाथी, घोड़े, रथ, रत्न और सम्पूर्ण सामग्रियोंके साथ आप अपना राज्य दे दीजिये!' उस समय हरिश्चन्द्र इतना मोहित हो गये थे कि बिना विचार किये ही बेहोशीमें उनके मुँहसे 'दिया' निकल पड़ा और निष्ठुर विश्वामित्रने भी तुरंत कह दिया—'लिया'*।

---

* मोहितो मायया तस्य श्रुत्वा वाक्यं मुनेर्नृपः।
दत्तमित्युक्तवान् राज्यमविचार्यं यदृच्छया॥
गृहीतमिति तं प्राह विश्वामित्रोऽतिनिष्ठुरः।

(देवीभागवत)

विश्वामित्रने आगे कहा—'महाराज! शास्त्रोंमें दानकी सांगता सिद्ध होनेके लिये एक प्रकारकी और दक्षिणा कही गयी है। स्वायम्भुव मनुने कहा है कि सांगता हुए बिना दान निष्फल ही होता है। इसलिये आप दानके योग्य ही कुछ और दक्षिणा दीजिये। हरिश्चन्द्रने विस्मयके साथ कहा—'महाराज! दानके योग्य क्या दक्षिणा है, सो आप ही बतलाइये!' विश्वामित्रने कहा—'ढाई भार सोना इसकी दक्षिणा होगी।' राजाने कहा—'दूँगा। 'उन्हें स्वयं विस्मय हो रहा था कि मैं यह सब कैसे कहता जा रहा हूँ।'

इसी समय राजाके जो सैनिक पीछे छूट गये थे, वे उन्हें ढूँढ़ते हुए उस आश्रमपर पहुँच आये। उन्होंने राजाकी बड़ी स्तुति की, परंतु उस समय राजा कुछ नहीं बोले। वे विश्वामित्रसे अनुमति लेकर सैनिकोंके साथ अपनी राजधानीकी ओर चल पड़े।

कोई बात कह देना बड़ा सरल है, परंतु उसके अनुसार आचरण करना बड़ा कठिन है। साधारण पुरुषोंमें और महापुरुषोंमें यही अन्तर है कि साधारण लोग तो कठिनाइयोंके सामने आनेपर अपनी बातसे विचलित हो जाते हैं और महापुरुष अनजानमें, विवशतामें तथा यहाँतक कि स्वप्नमें भी जो धर्मानुकूल बात कह देते हैं, उससे तनिक भी विचलित नहीं होते। धर्म ही सत्य है और सत्य ही धर्म है। धर्मविरोधी सत्य सत्य नहीं और सत्यविरोधी धर्म धर्म नहीं।

हरिश्चन्द्रने अपने सर्वस्व-दानकी बात कह दी थी, चाहे वह विवशतासे ही क्यों न कही गयी हो। उन्हें अपने लिये कोई चिन्ता नहीं थी। वे अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार सर्वस्व-दान करनेमें प्रसन्न ही होते; परंतु राजधानीमें आनेपर उन्हें इस बातकी बड़ी चिन्ता हुई कि अपनी सती-साध्वी धर्मपत्नी शैव्यासे क्या कहूँ?' अपने नन्हें-से शिशु रोहिताश्वको कैसे ढाढ़स बधाऊँ? हरिश्चन्द्रको धनका लालच नहीं था, राज्यका मोह नहीं था; वे अपने शरीरका बलिदान कर सकते थे; परंतु शैव्या और रोहिताश्वको दुःखी नहीं देख सकते थे। उन्होंने सोचा कि शैव्याको उसके मायके पहुँचा दिया जाय, रोहित भी वहीं रहेगा और मैं अपनेको उन तपस्वी ब्राह्मणके चरणोंमें समर्पित कर दूँगा। बस और करना ही क्या है?

शैव्या साधारण स्त्री नहीं थी, वह आदर्श सती थी, हरिश्चन्द्रकी आत्माके साथ उसकी आत्मा मिली हुई थी, यों कहना चाहिये कि उस दम्पतिके शरीर ही दो थे, आत्मा एक ही थी। वनसे लौटनेपर जब अपने पतिदेवकी सेवा-शुश्रूषा वह अपने-आप ही करने लगी, तब हरिश्चन्द्रका मनोभाव उससे

छिपा न रहा। उसने सोचा कि मेरे स्वामी जब बाहरसे लौटते थे, तब इनके मुखमण्डलपर प्रसन्नता नाचती रहती थी, इनकी आँखें प्रेमसे भरी रहती थीं, इनकी भौंहोंसे अनुग्रहकी वर्षा होती रहती थी; आज बात क्या है? स्वामीके मुखसे उदासीनता और चिन्ताके भाव क्यों प्रकट हो रहे हैं?

शैव्याने पूछा—'स्वामिन्! आज आप इतने उदास क्यों हैं? क्या आप किसी याचकको उसकी इच्छाके अनुसार दान नहीं दे सके हैं? क्या आपसे कोई ऐसा कार्य हो गया है, जिसको करते समय भगवान्की स्मृति न रही हो? क्या कर्म, वाणी अथवा मनसे आपने किसी प्राणीका तिरस्कार कर दिया है? क्या आपने कोई ऐसी बात कह दी है, जिसको पूर्ण करनेमें संदेह है? स्वामिन्! आप मुझसे कुछ न छिपावें। आपकी चिन्ता देखकर मैं व्याकुल हो रही हूँ। मुझे कुछ समझ नहीं पड़ता कि आप क्यों चिन्तित हो रहे हैं? आपके शरीरमें कोई पीड़ा नहीं, मेरा रोहित सकुशल है, मैं आपके सामने हूँ, फिर आपकी चिन्ताका क्या कारण है?'

हरिश्चन्द्रने कहा—'प्रिये! भगवान्की कृपासे मेरे धर्मपालनमें कोई बाधा नहीं पड़ी है। मैंने कल वनमें एक तपस्वी ब्राह्मणको सर्वस्व दान कर दिया है। अब मुझे चिन्ता इस बातकी है कि मैं तो उसका सेवक होकर रह सकता हूँ; परंतु तुम्हें और रोहिताश्वको सेवकके रूपमें कैसे रखूँगा? यही मेरे लिये असह्य हो रहा है। उस समय मैं मन्त्रमुग्ध-सा हो रहा था, मुझे कुछ सुध-बुध नहीं थी; परंतु कैसे भी सही, मैंने दान कर दिया है और अब प्रसन्नताके साथ उसका निर्वाह करना है। क्या रखा है धनमें, यह राज्य कितने दिनोंके लिये है। प्रिये! ये सब चार दिनकी चाँदनी हैं। आज हैं, कल नहीं हैं, इनके द्वारा यदि धर्म-

जैसी नित्य-वस्तु प्राप्त हो सके तो इनके त्यागमें रखा ही क्या है? अब हम सब धैर्यके साथ धर्म-पालनमें लग जायँ।'

शैव्याने कहा—'नाथ! यह तो बड़ी प्रसन्नताकी बात है। राज्यके प्रपंचोंमें रहकर हमलोग पूर्णतः भगवान्‌का स्मरण भी नहीं कर सकते थे। आपको मुझसे अलग रहना पड़ता था और मैं आपकी सेवासे वंचित रहती थी। अब भगवान्‌ने बड़ा ही सुन्दर अवसर दिया है। अब मैं निरन्तर आपकी सन्निधिमें रहकर सेवा कर सकूँगी। राज्य अथवा सम्पत्तिमें क्या धरा है? इनका इतना अच्छा सदुपयोग हो गया, यह बड़े आनन्दकी बात है।'

शैव्याकी बात सुनकर हरिश्चन्द्रकी चिन्ता मिट गयी। वे मन-ही-मन उसकी प्रशंसा करने लगे। सोचने लगे कि इसीका नाम तो आदर्श पत्नी है। मेरी इच्छामें ही इसकी इच्छा, मेरी प्रसन्नतामें ही इसकी प्रसन्नता और भगवान्‌के किये हुए प्रत्येक विधानमें कल्याणका दर्शन, बस, इससे बढ़कर और क्या चाहिये? मैं जीवनभर इसकी सेवा करूँ, इससे अलग न होऊँ, यही मुझे चाहिये। रात हो गयी। हरिश्चन्द्र और शैव्या दोनों सो गये।

दूसरे दिन हरिश्चन्द्र अभी नित्यकृत्यसे निवृत्त भी नहीं हो पाये थे कि प्रतिहारीने आकर समाचार दिया—'महाराज! एक बड़े तपस्वी ब्राह्मण आये हुए हैं। वे कहते हैं कि राज्य हमारा है। शीघ्र ही जाकर महाराजसे कहो! आपकी क्या आज्ञा है?' हरिश्चन्द्रने जाकर उनका स्वागत किया और उन्हें ऊँचे आसनपर बैठाकर पूजा की। विश्वामित्रने कहा—'राजन्! कल तुमने अपना सम्पूर्ण राज्य मुझे दे दिया है। तुम बड़े ही सत्यवादी और धार्मिक हो। अब अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। राज्य छोड़ दो और मेरे लिये

सांगतावाले ढाई भार सोनेका प्रबन्ध करो। हरिश्चन्द्रने कहा—'भगवन्! राज्य आपका ही है, इसे सम्हालिये। यह तो मैंने आपको दे ही दिया है। रहा ढाई भार सोना, उसे मैं अभी मँगाये देता हूँ। हरिश्चन्द्रने कोषाध्यक्षकी ओर इशारा किया।

कोषाध्यक्ष जब सोना लेकर उपस्थित हुआ तब विश्वामित्रने पूछा—'यह सोना कहाँसे आया है? क्या यह राज्यकोषसे आया है? हरिश्चन्द्र! तुम मुझसे कपट कर रहे हो। जब मुझे राज्य दे दिया, तब क्या कोष बाकी ही रहा? मेरे ही कोषसे मुझे सोना देनेका अर्थ क्या है? क्या तुम अपनी प्रतिज्ञासे विचलित हो गये? यदि तुम नहीं दे सकते तो मत दो। मैंने छोड़ दिया।' विश्वामित्रकी बात सुनकर हरिश्चन्द्रने बड़ी व्याकुलतासे कहा—'भगवन्! क्षमा कीजिये। क्षमा कीजिये। मुझसे बड़ा अपराध हुआ। मैं अपनी भूल स्वीकार करता हूँ। यह कोष आपका है। कोषाध्यक्ष! सोना ले जाकर पूर्ववत् कोषमें रख दो। भगवन्! इस समय तो मेरे पास सोना नहीं है, कुछ समय दीजिये, मैं आपको अवश्य दूँगा।' विश्वामित्रने कहा—'पहली बात तो यह है कि अब यह राज्य मेरा हो गया, यह पृथ्वी तुमने मुझे दे दी, अब तुम्हें इसमें रहनेका अधिकार नहीं है। जिन आभूषणोंको तुम पहने हुए हो इन्हें अभी उतार दो और अपनी स्त्री तथा बेटेके साथ वल्कल-वस्त्र पहनकर अभी यहाँसे निकल जाओ। मैं समयकी बात कुछ नहीं जानता, जो तुमने प्रतिज्ञा की है, उसे पूरी करो।' राजाने अपने स्त्री और पुत्रके साथ वल्कल धारण करके राजमहलसे प्रयाण किया।

कहीं-कहीं ऐसी कथा आती है कि इन्द्रलोकसे लौटकर विश्वामित्रने योगबलसे हरिश्चन्द्रकी आत्माको अपने पास बुला लिया। हरिश्चन्द्रका शरीर राजमहलमें सो रहा था और उनकी

आत्मा विश्वामित्रके सामने हाथ जोड़े खड़ी थी। विश्वामित्रने कहा—'राजन्! तुम बड़े दाता हो। तुम्हारा यश त्रिलोकीमें छा रहा है, तुम अपना सम्पूर्ण राज्य मुझे समर्पित कर दो। यदि ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हारा समग्र राज्य मैं अभी तपोबलसे भस्म कर दूँगा। हरिश्चन्द्रने सोचा कि सारे राज्यके नष्ट होनेकी अपेक्षा मेरा नष्ट हो जाना अच्छा है और इसमें नष्ट होनेकी बात ही क्या है? 'ऋषिराजाको सारा राज्य निवेदन कर देनेसे मैं राज्यकार्यकी झंझटोंसे मुक्त हो जाऊँगा और भगवान्‌का भजन करूँगा।

हरिश्चन्द्रने विश्वामित्रसे कहा—'प्रभो! मैंने अपना सम्पूर्ण राज्य आपके चरणोंमें समर्पित किया। अब मेरा कुछ नहीं, सब आपका है।' विश्वामित्रने हरिश्चन्द्रकी प्रशंसा करते हुए दानकी सांगता सिद्ध होनेके लिये दक्षिणा माँगी। उस समय हरिश्चन्द्रकी आत्मा राजधानीमें चली आयी और उनकी नींद खुल गयी। उन्होंने देखा कि मैं अपने राजमहलमें सो रहा हूँ। यह सब स्वप्न था। उनके सामने स्वप्नकी एक-एक घटना आने लगी—ऋषिका आश्रम, उनकी मुखाकृति और उनका नाम विश्वामित्र—सब-के-सब उनके दिमागमें घूमने लगे। वे सोचने लगे कि चाहे स्वप्नमें ही सही, मैंने अपने राज्यका दान कर दिया है। अब मैं राजा नहीं, राज्यपर मेरा कोई स्वत्व नहीं, इसका उपयोग करना मेरे लिये पापजनक है।

दूसरे दिन राजसभामें मन्त्री और सभासदोंके सामने हरिश्चन्द्रने सारी कथा कह सुनायी। मन्त्रियोंने कहा—'स्वप्नकी बातका क्या प्रमाण? लोग स्वप्नमें न जाने क्या-क्या देख जाते हैं, सुन जाते हैं, कह जाते हैं। यदि सब करने लगें तब तो दुनियामें गड़बड़ी मच जाय। आप इन बातोंको भूल जाइये और पूर्ववत् राज्यका संचालन कीजिये।' हरिश्चन्द्रने मन्त्रियोंकी बात अस्वीकार कर

दी। उन्होंने कहा—'मैंने अवश्य स्वप्नमें ही दान किया है, परंतु दान कर दिया है। मैं अब इस बातसे कभी टल नहीं सकता। राज्य उन्हीं महात्माका है। उनके आश्रमका पता मुझे मालूम नहीं। इसलिये जबतक उनका पता नहीं चल जाता, तबतक मैं राज्यकी देखभाल करूँगा; परंतु आदमियोंको भेजकर उनका पता लगवाया जाय और आजसे ही मुहर उनके नामकी कर दी जाय। राज्यके स्वामी वे रहेंगे और मैं उनका सेवक रहूँगा।' हरिश्चन्द्रकी आज्ञाके अनुसार उन्हें ढूँढ़नेके लिये दूत भेज दिये गये और मुहर बदल दी गयी। सभामें धन्य-धन्यकी ध्वनि गूँज उठी।

एकाएक विश्वामित्र सभामें आ पहुँचे। उन्हें देखते ही हरिश्चन्द्रका चेहरा खिल उठा। उन्होंने कहा—'यही हैं, यही हैं! जिन्हें मैंने स्वप्नमें दान किया था, जो इस राज्यके एकच्छत्र स्वामी हैं, वे ही महात्मा स्वयं आ गये। कितनी कृपा है भगवान्‌की, उन्होंने मेरी स्वप्नकी बात रख ली।' विश्वामित्रका स्वागत करके उन्होंने राज्यसिंहासनपर बैठाया। विश्वामित्रने कहा—'हरिश्चन्द्र! सत्यवादियोंमें तुम्हारी बड़ी कीर्ति है। पर यह कैसा सत्य है कि रात मुझे राज्यका दान करके सांगता दिये बिना ही भग आये और आज राजा बने बैठे हो।' हरिश्चन्द्रने उनके नामकी मुहर दिखाकर और सांगताकी दक्षिणा देनेका वादा करके उन्हें शान्त किया तथा अपनी स्त्री और पुत्रको लेकर राजमहलसे निकल पड़े। अस्तु!

जिस समय वल्कल-वस्त्र धारण किये हुए हरिश्चन्द्र, शैव्या और रोहिताश्व राजमहलसे नंगे पाँव और नंगे सिर निकले, उस समय सारी अयोध्यामें हाहाकार मच गया। कानोंकान सबको खबर लग गयी और सबने पुरीमें ही उन्हें घेर लिया। किसीने कहा—'प्रभो! हम आपके अनुयायी हैं, हमें मत छोड़ो। आप

हमपर कृपा करके हमें भी अपने साथ ले चलें।' कोई कह रहा था—'राजन्! थोड़ी देर और ठहर जाइये। आपको हम एक बार आँखभर देख लें। पता नहीं फिर कब आपके दर्शन होंगे?' कोई किसीसे कह रहा था—'जिनके बाहर निकलनेपर आगे-पीछे अनेकों नरपति हाथ जोड़े चलते थे, अनेकों सेवक हाथियोंपर सवार होकर, शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर जिनकी रक्षा करते हुए चलते थे, वे ही महाराज हरिश्चन्द्र आज नंगे पाँव जमीनपर चल रहे हैं। यह सुकुमार राजकुमार, जिसके कोमल शरीरमें अबतक कभी रूखी हवा नहीं लगने पायी है, नंगे पाँव जमीनपर कैसे चल पायेगा? इसके लंबे-लंबे बालोंपर धूल जम जायगी, इसका मुँह मुरझा जायगा। हा दैव! तुमने यह कौन-सी विपत्ति डाल दी।' कोई कह रहा था—'अरे! महारानी शैव्याको तो देखो, जिन्हें सूर्यकी किरणें भी नहीं देख पाती थीं, हवा जिनके पास डरते-डरते जाती थी, महलके बाहर जिन्होंने कभी पैर नहीं रखा, दूधके फेनके समान कोमल शय्यापर जो सोती थीं, वही आज वल्कल-वस्त्र पहनकर पैदल ही जा रही हैं। ये क्या वृक्षके नीचे सोयेंगी? ये किस कर्मका फल है? इनके-जैसे धर्मात्मा राजदम्पतिको क्या यही कष्ट भोगना था?' राजवंशकी यह दशा देखकर कोई रो रहा था, कोई विलाप कर रहा था, कोई मूर्च्छित हो रहा था। हरिश्चन्द्र निर्विकारभावसे आश्वासन देते हुए आगे बढ़ रहे थे।'

विश्वामित्रने आकर कहा—'हरिश्चन्द्र! अभी तू यहीं डटा हुआ है? जल्दी निकल जा यहाँसे। दान की हुई पृथ्वीका उपभोग नहीं करना चाहिये। हाँ, एक बात तो तूने बतायी ही नहीं, मुझे बाकी दक्षिणा कब देगा? आज, कल, परसों कितने दिनोंतक मैं तेरी प्रतीक्षा करूँ?' हरिश्चन्द्रने कहा—'भगवन्! इस समय

मेरे पास कुछ नहीं है, नहीं तो मैं तुरंत दे देता। मैं आपका ऋणी हूँ, कृपा करके आप मुझे एक महीनेका अवकाश दे दीजिये। मैं अवश्य आपकी दक्षिणा चुका दूँगा।' विश्वामित्रने कहा—'अच्छी बात है। जा, जिस दिन एक महीना पूरा होगा, उसी दिन यदि तूने पूरी दक्षिणा नहीं दे दी तो मैं तुझे भस्म कर डालूँगा।' हरिश्चन्द्रने हाथ जोड़कर स्वीकार किया।

जब वे वहाँसे चलने लगे तब प्रजाने फिर उन्हें घेर लिया। सब लोगोंने कहा—'राजन्! हम बाल-बच्चे, धन-धान्य सब कुछ छोड़कर आपके पीछे-पीछे छायाकी भाँति चलेंगे। जहाँ आप रहेंगे, वहीं हम रहेंगे; जहाँ आप हैं, वहाँ सुख है। वही हमारा नगर है और वही हमारे लिये स्वर्ग है।' प्रजाजनोंकी बात सुनकर हरिश्चन्द्रके हृदयमें स्नेह उमड़ आया, उनका दुःख देखकर वे स्वयं दुःखी हो गये। वे उन्हें समझाने लगे कि 'तुमलोगोंके चलनेसे मेरा धर्म-संकट और भी बढ़ जायगा, तुम्हें भी कष्ट होगा। तुम यहाँ रहकर धर्मपालन करो और हम भी कहीं रहकर धर्मपालन करें। यह जीवन केवल धर्मके लिये प्राप्त हुआ है। भगवान् सब भला करते हैं, सब भगवान्का भजन करो और उनपर विश्वास रखो।'

हरिश्चन्द्र अभी समझा ही रहे थे कि विश्वामित्रने पुनः आकर डाँटना शुरू किया। उनकी आँखें क्रोधसे लाल-लाल हो रही थीं। उन्होंने कहा—'तू धर्मभ्रष्ट हो गया है। झूठ बोलता है। कपट करता है। दान करके फिर लेनेकी इच्छासे प्रजामें षड्यन्त्र करता है। विश्वामित्रकी यह परुष वाणी सुनकर 'अभी निकल जाता हूँ' कहते हुए हरिश्चन्द्रने शैव्याका हाथ पकड़ लिया और उसे खींचते हुए चलने लगे।

विश्वामित्रके इस कृत्यको देखकर पाँचों विश्वेदेवा, जो उस

समय आकाशमें स्थित थे, दयासे द्रवित हो गये। उनके मुँहसे एकाएक निकल पड़ा—'विश्वामित्र बड़ा पापी है। इसे नरकमें भी ठिकाना नहीं मिलेगा। हरिश्चन्द्रको इसने राज्यसे वंचित कर दिया, कपटसे ठग लिया। अब हम किसके यज्ञमें सोमपान करेंगे, किसकी श्रद्धाका उपभोग करेंगे?' उनकी यह आवाज विश्वामित्रके कानोंतक पहुँची। उन्होंने कहा—'तुमलोग देवता होकर मनुष्योंका इतना पक्षपात करते हो, इसलिये तुम भी मनुष्य हो जाओ।' पीछे विश्वेदेवाने विश्वामित्रको अनुनय-विनयसे प्रसन्न कर लिया और विश्वामित्रने उनको गर्भसे पैदा होकर बिना गार्हस्थ्य धर्मका पालन किये ही काम-क्रोधादिसे मुक्त रहकर स्वर्गमें जानेकी छूट दे दी।

हरिश्चन्द्र अयोध्यासे तो चल पड़े; परंतु अब उनके मनमें यह प्रश्न उठा कि कहाँ जायँ? सारी पृथ्वीका दान हो गया, अब इसमें रहना नहीं चाहिये और इसके अतिरिक्त स्थान ही कहाँ है? एकाएक उन्हें काशीका स्मरण हो आया। उन्होंने सोचा—काशी तो त्रिलोकसे न्यारी है। वह त्रिशूलपर स्थित है, जन्म-मरणके चक्करसे बाहर है, भगवान् शंकरकी राजधानी है, दयामयी माँ अन्नपूर्णा वहाँ सबकी खोज-खबर रखती हैं। अब वहीं चलना चाहिये। हरिश्चन्द्र शैव्या और रोहिताश्वके साथ धीरे-धीरे काशीके लिये चल पड़े।

जब राज्य हो, सम्पत्ति हो, मित्र हो और आज्ञापालनके लिये अनेकों सेवक सामने खड़े हों, तब धर्मात्मा बनना कठिन नहीं है। तब तो धर्मात्मा न होनेपर भी धर्मात्मा होनेका स्वाँग किया जा सकता है और कहलाया जा सकता है। परंतु जब पासमें पैसे न हों, रहनेके लिये घर न हो, सहायताके लिये पशु-पक्षी भी न हों और खानेके लिये रोटीका एक टुकड़ा न मिलता हो, उस समय भी सच्चे हृदयसे प्रसन्नताके साथ धर्मपर आरूढ़ रहना किन्हीं महापुरुषोंका ही काम है। विपत्तिमें ही धर्म और धैर्यकी परीक्षा होती है।

हरिश्चन्द्र अपनी धर्मपत्नी शैव्या और नन्हें-से बालक रोहिताश्वको लेकर जब काशी पहुँचे, तब एक महीना पूरा होनेमें केवल एक ही दिन बाकी था। काशी अभी थोड़ी दूर थी, वहाँके ऊँचे-ऊँचे मन्दिर दीख रहे थे, गंगाकी हर-हर ध्वनि भी कानोंमें पड़ जाती थी। वे नगरमें प्रवेश करनेवाले ही थे कि शैव्या थक गयी, रोहिताश्वके पैरमें काँटा गड़ गया और वे वहीं एक वृक्षके नीचे बैठकर काँटा निकालने लगे। उन्होंने देखा कि रोहिताश्वके कोमल तलवेमें कई फफोले पड़ गये हैं, उनकी आँखोंमें आँसू आते-आते रुक गये। काँटा निकल गया, परन्तु शैव्याके अधिक थक जानेके कारण वे आगे नहीं बढ़ सके। यही कारण था कि अयोध्यासे काशी आनेमें लगभग एक महीनेका समय लग गया, नहीं तो न जाने कबके पहुँच गये होते।

रोहिताश्वने कहा—'पिताजी! मुझे भूख लगी है।' हरिश्चन्द्रने पुकारकर कहा—'कोई है यहाँ? बच्चेको भूख लगी है, कुछ ले आओ' कहते-कहते उनका मुँह संकोचसे झुक

गया। रोहिताश्वने कहा—'माँ! भूख लगी है।' शैव्याकी आँखोंसे आँसूकी कुछ बूँदें ढुलक पड़ीं। हरिश्चन्द्रने कहा—'प्रिये! दुःख करनेकी क्या बात है? जब भगवान्‌के दिये हुए राज्यको हम प्रसन्नतासे भोगते थे, तब उनकी दी हुई विपत्तिको प्रसन्नतासे क्यों न भोगें?' यह उनका प्रसाद है, इसकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिये। बड़े प्रेमसे इसे शिरोधार्य करना चाहिये। रोहिताश्वने कहा—'पिताजी! मुझे भूख लगी है।'

हरिश्चन्द्रने कहा—'बेटा! देखो यह गंगा कितनी सुन्दर हैं। इनमें सारस, हंस आदि पक्षी कितनी प्रसन्नतासे क्रीडा कर रहे हैं। यह तोता है, यह कोयल 'कुहू-कुहू' कर रही है। ये मोर अपने पिच्छ फैलाकर नाच रहे हैं। देखो, कितना आनन्द है।' रोहिताश्वने कहा—'यही गंगा है?' हरिश्चन्द्रने कहा—'हाँ बेटा! यही गंगा हैं।' रोहिताश्व—'यह हंस है?' हरिश्चन्द्र—'हाँ बेटा! यह बड़ा सुन्दर हंस है।' रोहिताश्व—'पिताजी! मुझे भूख लगी है।' हरिश्चन्द्रने कहा—'बेटा! धीरज धरो। तुम तो राजा हो। क्या तुम भूख नहीं सह सकते?' चलो, अभी अन्नपूर्णा माँके दरबारमें चलते हैं, कोई-न-कोई प्रबन्ध हो ही जायगा।' रोहिताश्वने कहा—'पिताजी! अब नहीं सहा जाता। कल भी तो आपने कुछ नहीं दिया था। माँ! मैं लड्डू खाऊँगा।'

यह बातें हो ही रही थीं कि उधरसे सिरपर कुछ लिये हुए एक वृद्धा स्त्री निकल आयी। हरिश्चन्द्रने उससे कहा—'देवि! हमलोग दूसरे देशके हैं। रास्ता नहीं मालूम है। नगरमें कैसे जायँ?' वृद्धाने कहा—'महाभाग! तुम्हारे शरीरमें तो चक्रवर्ती राजाके लक्षण हैं; तुम्हारी यह अवस्था कैसे हुई?'

हरिश्चन्द्रने कहा—'माता! अब पुरानी बातोंके कहनेसे क्या लाभ? उसे तुम जानकर भी क्या करोगी?' रोहिताश्वने कहा—'पिताजी! मुझे भूख लगी है।' वह वृद्धा स्त्री अपनी पोटलीमेंसे कुछ कलेवाका सामान निकालकर रोहिताश्वको देने लगी। हरिश्चन्द्रने कहा—'माता! हम किसी मनुष्यके कृपाभाजन नहीं बनना चाहते। तुम इस बच्चेको भिक्षामें कुछ मत दो।' वृद्धाने कहा— 'अरे! क्या यह बच्चा तुम्हारा ही है, मेरा नहीं है?' मैं इसे खिलाऊँगी। कलेवाका सामान देते हुए उस वृद्धा स्त्रीने नगरमें जानेका रास्ता बतला दिया और वहाँसे चली गयी।

हरिश्चन्द्रने शैव्यासे कहा—'प्रिये! आज महीना पूरा हो रहा है। अब क्या किया जाय। सत्यकी रक्षा कैसे हो? क्या प्राण रहते मैं सत्यसे विचलित हो जाऊँगा?' अभी हरिश्चन्द्रकी बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि अचानक विश्वामित्र वहाँ आ गये। राजाने नम्रतासे उन्हें प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! ये मेरे प्राण हैं, यह मेरा बच्चा है और यह मेरी पत्नी है। हमलोग आपकी जो सेवा कर सकते हों, वह आज्ञा कीजिये।' विश्वामित्रने कहा—'मैं यह सब कुछ नहीं जानता। आज महीना पूरा हो रहा है। मेरी दक्षिणा दे दो। तुम अपनी प्रतिज्ञापर अटल हो न? देखो, अब दोपहर हो रही है।' हरिश्चन्द्रने कहा—'भगवन्! आप आधे दिनतक और प्रतीक्षा कीजिये। सूर्यास्तके पूर्व ही मैं आपकी दक्षिणा दे दूँगा।' विश्वामित्रने कहा—'यही सही! मैं शामको फिर आऊँगा। यदि तुम मेरी दक्षिणा न दे सके तो अनर्थ हो जायगा।' विश्वामित्र चले गये।

हरिश्चन्द्र सोचने लगे कि इनकी दक्षिणाका क्या प्रबन्ध

किया जाय? ऐसे अवसरपर मुझे ऋण भी कौन दे सकता है? किसीसे दान लिया ही नहीं जा सकता। यदि बिना दिये मर गया तो मुझसे नीच और कौन होगा? अब एक ही उपाय है अपने-आपको बेच दूँ। जीवनभरके लिये किसीका सेवक बन जाऊँ। किसी प्रकार दक्षिणा देकर प्रतिज्ञा पूरी करनी ही चाहिये। हरिश्चन्द्र सोचते-सोचते व्याकुल हो गये। उन्हें कुछ सूझता ही नहीं था। शैव्याने कहा—'महाराज! आप चिन्ता छोड़कर अपने सत्यका पालन करें। झूठे लोग श्मशानकी भाँति वर्जनीय हैं।' सत्य ही परम धर्म है। झूठे मनुष्यके अग्निहोत्र, अध्ययन, दान सभी निष्फल हो जाते हैं। मैंने पुराणोंमें सुना है कि कृति नामके राजाने सात अश्वमेध-यज्ञ किये थे, राजसूय-यज्ञ किया था; परंतु झूठ बोलनेके कारण वह स्वर्गसे गिर पड़ा। महाराज! मैं एक बात कहूँ, 'अब मेरे गर्भसे संतान हो चुकी है।' इतना कहकर शैव्या रोने लगी। हरिश्चन्द्रने कहा—'कल्याणी! रोओ मत। तुम्हारा बालक तुम्हारे पास है। जो कुछ कहना चाहती हो, कहो।'

शैव्याने कहा—'राजन्! मुझसे संतान हो चुकी है। इसलिये मेरा पाणिग्रहण सफल हो गया है। अब आप मुझे किसीके हाथ बेच दें। मैं उसकी सेवा करूँगी और मेरा मूल्य लेकर आप विश्वामित्रको दे दीजिये। शैव्याकी बात सुनकर हरिश्चन्द्र मूर्च्छित-से हो गये। वे किसी प्रकार अपनेको सँभालकर कहने लगे—'प्रिये! यह तुमने क्या कहा? यह तो बड़े दुःखकी बात है। क्या हमारा प्रेम-बन्धन समाप्त हो चुका? क्या हम सुखके वे दिन भूल गये? मैं ऐसा निष्ठुर कार्य कैसे कर सकूँगा? मैंने ऐसी बातें सुन लीं, मुझे धिक्कार है; मुझे धिक्कार है।' हरिश्चन्द्र जमीनपर गिर पड़े।

शैव्या समझाने लगी—'राजन्! यह किस कर्मका फल है? आप जमीनमें इस तरह क्यों सो रहे हैं? इन्द्र और उपेन्द्रके समान सुख भोगनेवाले आपको मैं जमीनपर पड़ा हुआ नहीं देख सकती।' इतना कहते-कहते शैव्याका गला भर आया और वह भी मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़ी। रोहिताश्व रो-रोकर पुकारने लगा—'पिताजी! उठिये। माँ! उठ। मुझे गोदमें ले ले। मुझे भूख लगी है, कुछ खिलाओ। तुमलोग क्यों रो रहे हो? मेरी बात क्यों नहीं सुनते? मेरी जीभ सूख रही है। मुझे पानी पिलाओ।' इसी समय विश्वामित्र वहाँ उपस्थित हो गये।

विश्वामित्रने मूर्च्छित हरिश्चन्द्र और शैव्याके ऊपर अपने कमण्डलुका शीतल जल छिड़ककर उन्हें जगाया और कहा—'राजन्! उठो। अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। ऋणी मनुष्यका दुःख प्रतिक्षण बढ़ता ही जाता है।' हरिश्चन्द्र विश्वामित्रको देखकर पुनः मूर्च्छित-से हो गये। वे इसलिये मूर्च्छित नहीं होते थे कि देना न पड़े, बल्कि देनेका कोई उपाय न देखकर मूर्च्छित हो जाते थे। विश्वामित्रने पुनः उन्हें होशमें लाते हुए कहा—'राजन्! सत्यकी बड़ी महिमा है। सत्यके बलपर सूर्य उगता है, सत्यके बलपर पृथ्वी ठहरी हुई है। सत्य ही परम धर्म है और सत्यके बलपर ही स्वर्ग टिका हुआ है। हजारों अश्वमेध-यज्ञ सत्यकी बराबरी नहीं कर सकते। तुम उठो, अपने धर्मका पालन करो। विलम्ब मत करो।'

विश्वामित्रने आगे कहा—'मैं तुम्हारे-जैसे दुष्टसे झूठ-मूठ सत्यकी आशा रखता हूँ। आज यदि सायंकालतक मेरी दक्षिणा नहीं मिल जायगी तो अनर्थ हो जायगा।' विश्वामित्र

चले गये। राजा और भी चिन्तित हो गये। शैव्याने पुनः आग्रह किया कि 'मुझे बेचकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिये।' बार-बार आग्रह करनेपर हरिश्चन्द्रने कहा—'अच्छी बात है। मैं यह क्रूर कर्म भी करूँगा। प्रिये! तुम वास्तवमें देवी हो, तुम्हारे ही कारण मेरे सत्यकी रक्षा हो रही है। मैं तुम्हें बेचूँगा, रोहितको बेचूँगा और बड़ी प्रसन्नतासे अपनेको चाण्डालके हाथों बेच दूँगा। परंतु सत्यसे विचलित नहीं होऊँगा। सत्य ही मेरा जीवन है, सत्य ही मेरा प्राण है।'

हरिश्चन्द्रने अपने पुत्र और पत्नीके साथ नगरमें प्रवेश किया। वे जोर-जोरसे पुकारकर कहने लगे—'नगरवासियो! मेरी बात सुनो। क्या पूछते हो, मैं कौन हूँ, मैं क्रूर हूँ। मैं मनुष्यतारहित हूँ। मैं राक्षससे भी कठोर हूँ। मैं स्वयं ही अपनी प्राणोंसे प्यारी पत्नीको बेचनेके लिये ले आया हूँ। यदि आपमेंसे किसी सज्जनको दासीकी आवश्यकता हो तो इसे खरीद लें।' हरिश्चन्द्रकी बात सुनकर बहुत-से लोग चकित हो रहे थे; कइयोंको बड़ी दया आ रही थी; बहुत-से सोच रहे थे कि इनपर कौन-सा संकट आया है, जो यह अपनी पत्नीको बेच रहे हैं। कई सहृदयोंकी आँखोंसे आँसू बहने लगे।

उसी समय एक वृद्ध ब्राह्मणने आकर कहा—'मैं इसे खरीदना चाहता हूँ। मुझे एक दासीकी बड़ी आवश्यकता है। मेरी धर्मपत्नी बड़ी ही सुकुमारी है। उससे घरके काम नहीं हो पाते। बोलो क्या लोगे?' हरिश्चन्द्रने कहा—'भगवन्! मैं नहीं जानता कि इसका क्या मूल्य होना चाहिये। जो उचित हो, वह आप दे दीजिये।' वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी विश्वामित्रने कहा—'राजन्! तुम्हारी स्त्री सब प्रकारसे योग्य है। इसे

देखनेसे स्पष्ट मालूम होता है कि इसका चरित्र पवित्र है। जीवनभर यह अपने शील-व्रतकी रक्षा करेगी। इसकी अवस्था, कर्म, वय, रूप सभी उत्तम स्त्रियोंके हैं। इसलिये इसका मूल्य करोड़ स्वर्णमुद्रा होना चाहिये।' इतना कहकर उन्होंने हरिश्चन्द्रके वल्कल-वस्त्रमें स्वर्णमुद्राएँ रख दीं और शैव्याको पकड़कर अपने साथ ले चलने लगे। रोहिताश्वने अपनी माँकी साड़ी पकड़ ली। उसे डाँटकर वे वृद्ध ब्राह्मण शैव्याको खींच ही रहे थे कि शैव्याके धैर्यका बाँध टूट गया, वह रोने लगी।

उसने कहा—'ब्राह्मण देवता! आपने मुझे खरीद लिया। मैं आपकी दासी हो गयी। मैं आपके साथ चलनेके लिये तैयार हूँ। परंतु एक क्षणके लिये आप मुझे छोड़ दीजिये। मैं अपने बच्चेको भर आँख देख लूँ। फिर यह कब मिलेगा? उसने रोहितकी ओर देखकर कहा—'बेटा! मेरा स्पर्श मत करो। राजकुमार! मैं अब दासी हो गयी। बालक रोहिताश्व माताको इस रूपमें देखकर 'अम्मा-अम्मा' कहकर रोने लगा और जोरसे पकड़ लिया। वह किसी प्रकार अपनी माताको छोड़ता ही न था। ब्राह्मणने रोहिताश्वको डाँटकर उसे एक लात मारी, वह गिर पड़ा। शैव्या उसे उठा नहीं सकती थी। उसने गिड़गिड़ाकर कहा—'अब आप मेरे मालिक हैं। मैं इतनी प्रार्थना आपसे करती हूँ कि इस बच्चेको भी खरीद लीजिये। यदि आप इसे नहीं खरीदेंगे तो मैं आपके घर जाकर भी पूरी शक्तिसे आपकी सेवा नहीं कर सकूँगी। मेरा मन तो रोहितके पास होगा। मैं काम कैसे करूँगी?' ब्राह्मणने कहा—'यह नहीं हो सकता। यदि मैं इसे खरीद लूँगा तो दिन-रात तुम इसके दुलार-प्यारमें ही लगी रहोगी, घरका

काम कैसे सधेगा? मैं इसे नहीं खरीदता।' परंतु किसी तरह बालक माताको छोड़नेपर राजी नहीं हुआ।

ब्राह्मणने दया करके स्वीकार कर लिया और उसका मूल्य देकर माता-पुत्र दोनोंको ले चला। शैव्याने मन-ही-मन हरिश्चन्द्रको प्रणाम करके भगवान्‌से प्रार्थना की कि 'प्रभो! यदि मेरे स्वामीने सच्चे हृदयसे सत्यका पालन किया हो और मैं मन, कर्म, वाणीसे उन्हींकी दासी होऊँ तो स्वामीके साथ शीघ्र ही मिलूँ।' हरिश्चन्द्रने अपना मुँह फेर लिया। शैव्याकी यह दशा उनसे देखी न गयी। परंतु शैव्याकी अपेक्षा भी उनके हृदयमें सत्यका अधिक प्रेम था। ब्राह्मण, शैव्या और रोहितके जानेके थोड़ी देर बाद ही विश्वामित्र उपस्थित हुए।

उस समय हरिश्चन्द्र सोच रहे थे कि भगवान्‌की क्या लीला है। वायु, सूर्य, चन्द्रमा और दूसरे लोग जिसे देख नहीं सकते थे, वही शैव्या आज दूसरेकी क्रीतदासी हो गयी है। जिस रोहितके सम्बन्धमें ऐसी धारणा थी कि वह कभी सम्राट् होगा, वही आज भूखों मर रहा है, दूसरोंके द्वारा मारा जा रहा है। परंतु क्या किया जाय, इसमें ही मेरा कल्याण होगा, इसीमें सबका मंगल होगा। वे सोच ही रहे थे कि विश्वामित्रने अपनी दक्षिणाका तकाजा किया। हरिश्चन्द्रने, जो कुछ उनके पास था, विश्वामित्रके सामने रख दिया।

विश्वामित्रने पूछा—'राजन्! यह धन तुम्हें कैसे प्राप्त हुआ है? तुम दान तो ले नहीं सकते, क्षत्रिय हो, किसीसे माँग सकते नहीं, फिर इतनी सम्पत्ति तुम्हें कहाँसे प्राप्त हुई?' हरिश्चन्द्रने कहा—'महाराज! यह जानकर आप क्या करेंगे? उन बातोंको भूल जाने दीजिये। उनके स्मरणसे हृदय

विह्वल हो जाता है।' विश्वामित्रने कहा—'बिना जाने मैं ले ही नहीं सकता। न्यायोपार्जित द्रव्य ही दक्षिणाके काममें आ सकता है। मैं अन्यायोपार्जित द्रव्य कदापि ग्रहण नहीं करूँगा।' हरिश्चन्द्रने सारी बातें कहीं। विश्वामित्रने कहा—'राजन्! यह धन तो बहुत ही थोड़ा है। इतनेसे मेरी दक्षिणा पूरी नहीं होती। शीघ्र ही और दक्षिणा ले आइये।' हरिश्चन्द्रने कहा—'भगवन्! अभी मैंने अपनी पत्नी और बालकको बेचा है। कुछ समय और प्रतीक्षा कीजिये। मैं आपकी दक्षिणा पूरी कर दूँगा। मुनीन्द्र! आप क्रोध न करें। मुझे जितना प्राप्त हो सकेगा वह सब मैं आपको दे दूँगा। मैं चाण्डालकी भी दासता कर सकता हूँ, परंतु सत्यसे विचलित नहीं हो सकता।'*

विश्वामित्रने कहा—'अब थोड़ा-सा दिन बाकी है। सूर्यास्तके पहले ही इसका प्रबन्ध करना होगा। यदि समयसे मेरी दक्षिणा नहीं मिल गयी तो मैं तुम्हें सत्यसे च्युत कर दूँगा।' विश्वामित्र यह कहते हुए दूसरी ओर चले गये। हरिश्चन्द्र धैर्यके साथ कहने लगे—'भाई! जबतक सूर्य है तभीतक मुझे कोई खरीद ले। मैं सब प्रकारसे उसकी सेवा करूँगा।' वे यह घोषणा करते हुए आगे बढ़ ही रहे थे कि धर्मने चाण्डालका वेष धारण करके आगमन किया। उसने हरिश्चन्द्रसे कहा—'मुझे दासकी आवश्यकता है, मैं तुम्हें खरीदूँगा। तुम अपना दाम बताओ।' उसकी भीषण आकृति देखकर हरिश्चन्द्र सशंक हो गये। उन्होंने कहा—'भाई! तुम कौन हो?' चाण्डालने कहा—'मैं प्रवीर नामका चाण्डाल हूँ। मेरा काम है मुर्दोंका

* मुनीन्द्र मा कुपस्तुभ्यं लभ्यं यच्छामि कांचनम्।
विधाय निर्विषादस्य निषादस्यापि दासताम्॥

कफन लेना और जल्लादी करना।' हरिश्चन्द्रकी आत्मा काँप उठी। वे सहसा यह निर्णय नहीं कर सके कि चाण्डालके हाथों बिक जाना ठीक है या नहीं। एक ओर यदि सूर्यास्तके पहले बिक नहीं जाते, दक्षिणा नहीं दे देते तो सत्यसे च्युत हो जानेका भय है और दूसरी ओर यदि बिक जाते हैं तो चाण्डालकी सेवा करनी पड़ती है। आत्माके विरुद्ध, धर्मके विरुद्ध चाण्डालकी सेवा करनेसे मेरी क्या गति होगी, इस विचारमें वे पड़ गये।

इसी समय क्रोधसे लाल-लाल आँखें किये हुए विश्वामित्र आते दीख पड़े। विश्वामित्रको देखते ही हरिश्चन्द्र उनके चरणोंपर गिर पड़े। विश्वामित्रने कहा—'जब तुम्हारा पर्याप्त मूल्य देनेके लिये चाण्डाल तैयार है तब बिकनेमें आनाकानी क्यों कर रहे हो? क्या तुम मुझे दक्षिणा देना नहीं चाहते?' हरिश्चन्द्रने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैं पवित्र सूर्यवंशमें पैदा हुआ हूँ। अबतक मैंने जान-बूझकर वर्णाश्रमधर्मके विरुद्ध कोई आचरण नहीं किया है। चाण्डालकी दासता करनेको हृदय सहसा तैयार नहीं होता। परंतु आप इसीमें प्रसन्न हैं और आप ऐसी ही आज्ञा देते हैं तो बिकनेकी तो बात ही क्या, मैं चाण्डालके चरणोंपर अपना बलिदान भी कर सकता हूँ।' विश्वामित्रने इशारा किया और चाण्डालने करोड़ों मुहरें देकर हरिश्चन्द्रको खरीद लिया। विश्वामित्रने अपनी दक्षिणा ले ली और चाण्डाल हरिश्चन्द्रको लेकर अपने श्मशानपर गया।

कहा जाता है कि हीरा जितना ही खरादपर चढ़ाया जाता है, उतना ही अधिक वह आबदार होता है। विपत्ति ही सम्पत्तिकी जननी है। परीक्षा ही महत्त्वको प्रकट करती है। जिसके जीवनमें कठिनाइयाँ नहीं आयीं, वह आत्मशक्तिकी परीक्षा ही कब कर सकता है। भगवान् जब देखते हैं कि कोई बुरे समयमें भी अपने धर्मपर आरूढ़ है, तब प्रसन्न होकर उसे अपनी गोदमें उठा लेते हैं। परीक्षाकी भी सीमा होती है और उसकी सीमापर ही सफलताका निवास है। हरिश्चन्द्रकी अब थोड़ी-सी ही परीक्षा बाकी है, धैर्यके साथ उनके सत्यप्रेमको देखते हुए उनकी सफलताकी ओर बढ़ें।

हरिश्चन्द्र चाण्डालके यहाँ चार दिनतक तो हाथ-पैर बाँधकर एक बंद कोठरीमें रखे गये। उन्हें भूख-प्यासकी तो याद ही नहीं थी और चाण्डालके घर खाना पड़ेगा, इसकी उनके मनमें सम्भावना भी नहीं थी। पाँचवें दिन उन्हें बन्धनसे निकालकर श्मशानपर लाया गया। चाण्डालने उन्हें बहुत डाँट-डपटकर उनकी ताड़ना करके बतलाया—'तुम श्मशानपर रहो और जो यहाँ मुर्दा जलाने आवे, उससे कफन ले लिया करो।' हरिश्चन्द्र रात-दिन बड़ी सावधानीके साथ अपना काम करने लगे।

श्मशानपर अनेकों प्रकारके लोग अपने सम्बन्धियोंको जलाने आते। हरिश्चन्द्र सबसे श्मशानका कर लेते और लोगोंको रोते-पीटते, मरते-जलते देखते। उन्हें सांसारिक जीवनसे विराग हो गया। उन्होंने श्मशानपर रहकर देखा और खूब देखा कि इस जीवनका अन्त, इस शरीरका अन्त यही है। एक-न-एक दिन इस घाटपर सबको आना ही पड़ेगा। तब अच्छा ही है। मैं पहलेसे ही यहाँ आ गया। जिस शरीर-सुखके लिये राज्यकी, स्त्रीकी,

पुत्रकी और धनकी आवश्यकता थी, उस शरीरकी जब यही गति होती है, तब उसके लिये धर्मसे विचलित होना व्यर्थ है। भगवान्‌ने मेरी रक्षा की, संसारके मोहसे मुझे बचा लिया। यह सोचकर हरिश्चन्द्रके मनमें शान्तिका संचार हुआ। वे प्रसन्नताके साथ भगवान्‌का स्मरण करते हुए उनकी इच्छासे उपस्थित अपने कर्तव्यका पालन करने लगे।

एक दिनकी बात है, आधी रातके लगभग एक स्त्रीको पकड़कर बहुत-से लोग ले आये और वह चाण्डाल भी उनके साथ था। लोगोंने हरिश्चन्द्रसे कहा—'तुम अभी इस स्त्रीको मार डालो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'मैं स्त्रीपर शस्त्र नहीं चला सकता। मैं बिक गया हूँ, यह सत्य है, परंतु मैं अपना काम कर रहा हूँ। मेरा काम स्त्रीको मारना नहीं है।' चाण्डालने डाँटते हुए कहा—'तुम्हारा काम कुछ नहीं है, जो काम मैं बताऊँ वही तुम्हारा काम है। तुम बिक गये हो चाण्डालके हाथों और बात करते हो देवताओंकी! तुम्हें सेवक-धर्मका पता नहीं। उसने बलात् हरिश्चन्द्रके हाथमें खंजर दे दिया और वे सब वहाँसे हट गये।

उस स्त्रीने हरिश्चन्द्रसे कहा—'भाई! मैं बड़ी विपत्तिमें फँसी हूँ। मेरा एक नन्हा-सा लड़का था, वह आज जिनके यहाँ मैं रहती हूँ, उनका कुश लानेके लिये जंगलमें गया था और वहीं साँपके काटनेसे मर गया।' दिनमें तो मुझे उसके पास जानेकी आज्ञा ही नहीं मिली, आधी रातको जब मैं उसके पास गयी और रोने लगी तब लोगोंने मुझे पकड़ लिया और कहने लगे कि 'तू राक्षसी है तथा इस मुर्देको खानेके लिये इस समय यहाँ आयी है।' मैं बहुत रोयी, बहुत गिड़गिड़ायी, परंतु उन्होंने मेरी एक न सुनी। यहाँ पकड़कर मुझे ले आये और मारनेकी आज्ञा दे गये।

मैं तुमसे एक प्रार्थना करती हूँ कि 'मुझे एक घड़ीकी छुट्टी दे दो, मैं अपने बच्चेके शवको उठा ले आऊँ, उसका दाह-संस्कार कर दूँ, तब तुम मुझे मार डालना। मुझे अपने जीवनसे कोई मोह नहीं है।' हरिश्चन्द्रने अनुमति दे दी और वह बच्चेका शव लानेके लिये चली गयी।

हरिश्चन्द्र श्मशानपर इधर-उधर टहल रहे थे। उनका मन उसी स्त्रीके सम्बन्धमें नाना प्रकारके संकल्प-विकल्प कर रहा था। एकाएक उनके कानमें एक करुण-ध्वनि आयी। वे चौकन्ना हो गये। वह एक स्त्रीकी दुःखभरी आवाज थी। उन्होंने ध्यानसे सुना, वह कह रही थी—'प्रियतम! तुम्हारी ऐसी अवस्था! क्या हमारा रक्षक कोई नहीं है? प्रारब्ध! तू बड़ा निष्ठुर है। विद्याधरी! तू राक्षसी है। मेरे पतिदेवकी हत्या क्यों कर रही है?' हरिश्चन्द्रने सब बातें सुनीं। उन्होंने निश्चय किया कि यह किसी राजाकी पत्नी है। इसके पतिका कोई बलिदान कर रहा है। कुछ आगे बढ़कर उन्होंने पूछा—'कल्याणि! तुम क्यों रो रही हो?' स्त्रीने कहा— 'महाभाग! मुझसे क्या पूछ रहे हो? स्वयं कुछ आगे बढ़कर देख लो।' हरिश्चन्द्रने जाकर देखा, एक व्यक्ति बरगदके वृक्षमें उलटा टँगा हुआ है। पैर ऊपर है, सिर नीचे, लंबे-लंबे बाल लटक रहे हैं, शरीरमें लाल चन्दन लिपटा हुआ है, पास ही तीन कुण्डोंमें अग्नि जल रही है। हरिश्चन्द्रके पूछनेपर उस व्यक्तिने बतलाया कि 'मैं काशी-नरेशका लड़का हूँ। यह मेरी पत्नी है। हम दोनों एक ही स्थानपर सो रहे थे। कोई राक्षसी ऊपरसे आकर हमें हर लायी। हमें हरे जानेका कष्ट नहीं है। मैं यह सोच रहा हूँ कि वह मेरा तो बलिदान करेगी, इसको व्यर्थ ही ले आयी और सुनकर तुम क्या करोगे, जल्दी यहाँसे भग जाओ। वह राक्षसी गंगा-स्नान करके आती ही होगी।

हरिश्चन्द्रने मन-ही-मन सोचा कि सत्यकी रक्षासे भी बढ़कर इसके प्राणोंकी रक्षा है। मैंने अबतक जो कुछ किया है, केवल बाह्य शरीरसे किया है। मेरा सत्य और मेरी सहनशक्ति केवल बाह्य है। यदि मैं अपने प्राणोंका दान करके इसके प्राणोंकी रक्षा कर सकूँ तो कितना अच्छा है![१] वे उस राजकुमारको छुड़ानेके लिये इतने आतुर हो गये कि उन्हें अपना दास-भाव भूल ही गया। उन्होंने राजकुमारसे कहा—'महाराज! मैं आपसे एक प्रार्थना करता हूँ, आप स्वीकार कीजिये। राजकुमार! दो प्रकारके मनुष्य संसारमें दुर्लभ हैं। एक तो वे, जो किसीकी प्रार्थना विफल नहीं करते और दूसरे वे, जो कभी किसीसे प्रार्थना नहीं करते।[२] आप मेरी प्रार्थना अवश्य सफल करेंगे, ऐसी आशा है।' राजकुमारने लंबी साँस लेकर कहा—'महाशय! इस समय मेरे पास कुछ नहीं है। मैं आपकी प्रार्थना कैसे पूरी कर सकता हूँ।' हरिश्चन्द्रने कहा—'जो आप कर सकते हैं वही तो मैं कहता हूँ।' राजकुमारके स्वीकार कर लेनेपर हरिश्चन्द्रने कहा कि 'मैं आपका बन्धन खोल देता हूँ और स्वयं आपके स्थानपर बँध जाता हूँ।' पहले तो राजकुमारने अस्वीकार कर दिया; परंतु हरिश्चन्द्र और उस स्त्रीके समझाने-बुझानेपर उन्होंने स्वीकार कर लिया। हरिश्चन्द्रने उनका बन्धन खोल दिया और स्वयं उनके स्थानपर बँध गये। राजकुमार यह सोचता हुआ कि मनकी स्थिति बड़ी विचित्र है, एक तो दूसरेकी रक्षाके लिये अपना बलिदान

१-दत्ता यन्मुनये महीं भृतकतां नीतो निषादस्य च
स्वात्मायं किमनेन बाह्यवपुषा सत्यं च सत्त्वं च मे।
प्राणैः स्वैर्यदि रक्षितुं पुनरहं प्राणानमुष्य क्षम-
स्तत्सत्येषु च सात्त्विकेषु च तदा काचित्पताका मम॥

२-न जातौ न जनिष्येते द्वाविमौ पुरुषौ भुवि।
अर्थितो यः करोत्येव यश्च नार्थयते परम्॥

कर रहा है और दूसरा अपनी रक्षाके लिये पहलेके प्राणोंका कुछ महत्त्व नहीं रखता। वह अपनी स्त्रीसहित वहाँसे चला गया।

विद्याधरी आयी। राजकुमारके स्थानपर हरिश्चन्द्रको देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने कहा—'पहले तो मैं एक साधारण राजा होनेवालेको ले आयी थी! इसके शरीरमें तो चक्रवर्ती सम्राट्‌के लक्षण हैं।' उसने हवन प्रारम्भ किया। हरिश्चन्द्र अपने हाथों अपने मांसका टुकड़ा काट-काटकर उसे देने लगे। अब वे अपना सिर काटकर देने ही जा रहे थे कि वहाँ एक तपस्वी आ गये। विद्याधरी उनको देखते ही वहाँसे भग गयी। उन्होंने पहले तो हरिश्चन्द्रको बहुत डाँटा; परंतु फिर दया करके उनके शरीरमें एक ऐसी ओषधि लगा दी कि उनका कटा हुआ शरीर जैसे-का-तैसा हो गया। इधर चाण्डालने पुकारा—'घाट छोड़कर कहाँ चले गये?' हरिश्चन्द्र तपस्वीसे अनुमति लेकर घाटपर आ गये और तपस्वी चले गये।

श्मशानमें आनेपर हरिश्चन्द्रकी आँखें लग गयीं। वे स्वप्न देखने लगे। उन्होंने अपनेको चाण्डालयोनिमें देखा, सैकड़ों वर्षोंतक मरकर नरककी यन्त्रणा भोगते रहे, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि चौरासी लाख योनियोंमें भटकते रहे, एक जन्ममें राजा हुए तो जुएमें सब हार गये, शैव्याको रोते-चिल्लाते देखा, रोहितको कष्टमें पड़ते देखा और अन्तमें उन्होंने देखा कि कुछ यमदूत उन्हें पकड़कर यमपुरी लिये जा रहे हैं। वहाँ यमराजके दर्शन हुए। उन्होंने कहा—'इतनेमें ही तुम घबरा गये? अनादिकालसे संसारमें दुःख भोगते-भोगते, भटकते-भटकते जो कुछ तुमने अनुभव किया है, उसका तो यह एक अंशमात्र है। जाओ, अब तुम जाओ। अभी तुम्हारा लड़का भी मरेगा और अभी तुम और कष्ट पाओगे, परंतु अब तुम्हें सुख भी शीघ्र ही मिलेगा।'

हरिश्चन्द्र स्वप्नमें यह सब देख ही रहे थे कि वह स्त्री अपने बच्चेके शवको गोदमें लेकर विलाप करती हुई वहाँ आ पहुँची और उसके विलापकी आवाज सुनकर उनका स्वप्न टूट गया।

वे उठकर उस स्त्रीके पास पहुँचे और बोले—'पहले कफन दे लो, उसके बाद अपने बच्चेका दाह-कर्म करो।' शैव्या कफन कहाँसे देती? उसके पास था ही क्या? वह अपने बच्चेको कलेजेसे सटाये रो रही थी। हरिश्चन्द्रने देखा कि बालक तो बड़ा ही सुन्दर है। इसके शरीरमें राजाके लक्षण हैं। इसकी मृत्यु साँप काटनेसे हुई है। मेरा रोहित भी इसी उम्रका होगा। भगवान् उसकी रक्षा करें। वे शैव्याको पहचान न सके। दासीका काम करते-करते उसकी आकृति बदल गयी थी। शैव्याने भी हरिश्चन्द्रको नहीं पहचाना। उसके मनमें यह कल्पना भी नहीं थी कि महाराज चाण्डालके वेषमें होंगे। वह विलाप करने लगी।

'बेटा! तुम कहाँ हो? बोलते क्यों नहीं? हम किस पापका फल भोग रहे हैं? मेरे स्वामी कहाँ हैं? वे मुझे समझाते भी नहीं। तुम्हें जगानेके लिये आते भी नहीं। वे किसपर विश्वास करके इतना निश्चिन्त हो गये हैं? राज्य गया स्वेच्छासे गया, उसकी कोई चिन्ता नहीं। पत्नी और बच्चे बेच दिये, इसकी भी कोई परवा नहीं? क्योंकि इससे सत्यकी रक्षा तो हुई। परंतु सम्राट्का पुत्र, राजर्षि हरिश्चन्द्रका पुत्र आज अग्नि-संस्कारके लिये श्मशानपर आया है और उसके शरीरपर कफनतक नहीं, क्या इस बातका उन्हें पता है?' शैव्या विलाप कर रही थी और हरिश्चन्द्रके कानोंमें उसकी आवाज जा रही थी। अब उन्होंने शैव्याको पहचान लिया। 'अरे! यह शैव्या है? मेरा रोहित मर गया।' यह कहते हुए हरिश्चन्द्र जमीनपर गिर पड़े।

कुछ ही क्षणोंमें हरिश्चन्द्रको चेतना आयी और वे विलाप

करने लगे—'बेटा! कुमार! तुम्हें शवके रूपमें देखकर मेरा कलेजा फट क्यों नहीं जाता? तुम 'पिताजी, पिताजी' कहते हुए मेरी गोदमें दौड़ आते थे; मेरे हृदयसे सट जाते थे, अब तुम कहाँ चले गये? तुम धूलभरे शरीरसे आकर मेरे कपड़ोंको मैला कर देते थे, मुझे कितना आनन्द आता था। बेटा! मैं अधम हूँ। मैंने तुम्हें तिनकेके समान बेच दिया, परंतु तुम्हें तो इतना निष्ठुर न होना चाहिये। आओ, मुझसे बोलो। मुझसे हँसो। हरिश्चन्द्रने झपटकर रोहिताश्वके शवको अपनी गोदमें ले लिया और मूर्च्छित-से हो गये। शैव्या अबतक उन्हें पहचान चुकी थी। उसे कितना कष्ट हुआ, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

राजाने सँभलकर शैव्याके पूछनेपर अपनी सब कथा कह सुनायी और बतलाया कि 'मैं पराधीन हूँ। चाण्डालका सेवक हूँ, मेरा काम है कफन लेना। मैं अब अपने जीवनका प्रयोजन नहीं देखता। मैं रोहितके साथ ही चितामें जलकर मर जाता, परंतु चाण्डालकी आज्ञा लिये बिना यदि मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँ तो मुझे दूसरे जन्ममें भी चाण्डाल ही होना पड़ेगा। आत्महत्याके पापसे मुझे बड़े भयंकर नरकमें जाना पड़ेगा। इसलिये भगवान् जैसे रखें, वैसे ही प्रसन्नतासे रहना ठीक जँचता है।' शैव्याने कहा—'स्वामिन्! मेरा जीवन ही किस कामका है? आप मेरे पास नहीं, रोहित था वह भी चल बसा, अब किसके लिये जीऊँ? परंतु मैं ब्राह्मणकी दासी हूँ न! उनकी आज्ञाके बिना मुझे भी मरनेका अधिकार नहीं है। यही बड़ा अच्छा है कि पुत्रके दाह-संस्कारके समय आप उपस्थित हैं।'

अब हरिश्चन्द्रके सामने एक कठिन कर्तव्य आया। नियम था कि इस मरघटपर जो जलाया जाय, हरिश्चन्द्र उसका कफन अवश्य लें। आज यदि हरिश्चन्द्र अपने पुत्रकी मृत्यु तथा पत्नीके

संतापके कारण इस कर्तव्यसे विचलित हो जाते हैं तो उनकी धार्मिकता अधूरी ही रह जाती है। वे पुत्र-शोकसे चाहे जितने व्यथित क्यों न हों, आज वे पिता नहीं हैं, चाण्डालके सेवक हैं। वे जरा भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा—'शैव्ये! पहले कफन देकर फिर अग्नि-संस्कार करो।' शैव्याने कहा—'स्वामिन्! आप तो देखते ही हैं; मेरे पास क्या है? मैं कहाँसे वस्त्र दे सकती हूँ?' परंतु हरिश्चन्द्रने उसकी एक न सुनी। शैव्याने कहा—'यही एक साड़ी मेरे पास है। मैं इसमेंसे आधा फाड़कर दिये देती हूँ और आधेसे अपनी लज्जा-निवारण करूँगी।' हरिश्चन्द्रने स्वीकार कर लिया।

परीक्षाकी हद हो गयी। हरिश्चन्द्रकी कर्तव्यपरायणता पूरी हो गयी। वे पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्णके चिन्तनमें मग्न हो गये। शैव्याने अपनी साड़ी फाड़नेके लिये हाथ लगाया। उसी समय आकाश प्रकाशसे भर गया और बड़ी ही गम्भीर ध्वनि सुनायी पड़ी—'महाराज हरिश्चन्द्र! आप धन्य हैं, आपका दान धन्य है, आपकी धीरता धन्य है, आपकी वीरता धन्य है, उदार, धीर और वीर पुरुषोंके आप आदर्श हैं।'* फूलोंकी वर्षा होने लगी। भगवान् नारायण, ब्रह्मा, इन्द्र, धर्म, लोकपाल, सिद्ध, गन्धर्व, रुद्र—सब-के-सब हरिश्चन्द्रके सामने प्रकट हो गये। हरिश्चन्द्रने आश्चर्यचकित होकर सबको प्रणाम किया और अपलक आँखोंसे भगवान्‌की ओर देखने लगे। धर्मने कहा—'बस-बस, तुम्हारी कर्तव्यपरायणताकी सीमा हो गयी! तुम्हारी सहनशक्ति, तुम्हारे सत्य और तुम्हारी धर्मनिष्ठासे मैं प्रसन्न हूँ। देखो, तुम्हें दर्शन देनेके लिये नारायण, शंकर, ब्रह्मा और इन्द्रादि

* अहो दानमहो धैर्यमहो वीर्यमखण्डितम्।
उदारधीरवीराणां हरिश्चन्द्रो निदर्शनम्॥

पधारे हुए हैं। स्वयं विश्वामित्र, जिन्होंने तुम्हारी इतनी कठोर परीक्षा ली है, वे तुमसे मित्रता करके क्षमा कराना चाहते हैं।' हरिश्चन्द्रने पुनः सबको प्रणाम किया।

विश्वामित्रने कहा—'राजन्! मेरे कारण आपको बड़ा कष्ट हुआ है, जिस तपस्विनीको देखकर आपने क्रोध किया था वह एक माया थी। मैंने ही ब्राह्मण बनकर मायासे बालक-बालिका बनाकर तुम्हें विवाहकी लीला दिखायी और तुम्हारा सर्वस्व-दान ले लिया। मैंने ही वृद्ध ब्राह्मण बनकर तुम्हारे पुत्र और पत्नीको खरीदा। मैंने ही सर्प बनकर तुम्हारे पुत्रको डसा। जो कुछ लीला आज रातमें तुमने देखी है, वह सब मेरी माया थी। तुम्हारी धर्मनिष्ठा देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। सत्यवादियोंमें सबसे पहले तुम्हारी गणना होगी। तुम्हारी कीर्ति अजर-अमर होगी। भगवान्‌के तुम प्रेमपात्र होओगे। सत्य स्वयं भगवान् हैं। उन्हें धारण करना भगवान्‌को धारण करना है।' इन्द्रने कहा—'हरिश्चन्द्र! मैं इन्द्र हूँ। तुम्हारी सत्यनिष्ठासे प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् भी तुम्हारे पास आये हैं। तुम्हें नित्यलोकोंकी प्राप्ति हुई। अपनी स्त्री और पुत्रके सहित मेरे साथ चलो। अपने पुण्यकर्मोंका फल भोगो।'

भगवान्‌की प्रेरणासे इन्द्रने अमृतकी वर्षा की, चारों ओर नगारे बजने लगे। केदारेश्वरका सारा मरघट दिव्य पुरुषोंसे भर गया। रोहिताश्व जीवित होकर प्रसन्नतासे अपनी माँके गलेसे लिपट गया। उसका शरीर पूर्ववत् स्वस्थ और सुकुमार हो गया। हरिश्चन्द्रने उसे अपनी गोदमें लेकर उसका आलिंगन किया। उसी क्षण हरिश्चन्द्रका शरीर दिव्य हो गया। उनके शरीरपर दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण और कभी न मुरझानेवाली माला आ गयी, वे स्वस्थ हो गये, उनके हृदयमें पूर्ण आनन्दका संचार हो

गया। शैव्या भी दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर रोहिताश्वके साथ हरिश्चन्द्रके पास खड़ी हो गयी। भगवान् चुपचाप सब देख रहे थे और चुप क्या थे, सब देवताओंके शरीरमें प्रवेश करके हरिश्चन्द्रका सम्मान कर रहे थे।

इन्द्रने हरिश्चन्द्रसे कहा—'अपनी पत्नी और पुत्रके साथ तुम्हें सद्‌गति प्राप्त हुई। अब मेरे साथ विमानपर आरोहण करो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'देवराज! मेरे स्वामी तो चाण्डालराज हैं। उनकी आज्ञाके बिना मैं स्वर्गमें नहीं जा सकता।' हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर धर्मने बड़ी नम्रतासे कहा—'हरिश्चन्द्र! मुझे मालूम था कि आपको विश्वामित्रकी परीक्षामें बहुत-से कष्ट उठाने पड़ेंगे। इसलिये मैंने ही चाण्डालका वेष धारण किया और आपके सामने ढिठाई की। वह चाण्डाल कोई दूसरा चाण्डाल नहीं, मैं ही था। अब अनुमति लेनेकी अपेक्षा नहीं है।' इन्द्रने हरिश्चन्द्रसे पुनः प्रार्थना की कि 'आप स्वर्गमें चलें।'

हरिश्चन्द्रने इन्द्रको नमस्कार करके कहा—'देवराज! आप मुझपर प्रसन्न हैं। इसलिये नम्रताके साथ मैं आपसे एक निवेदन करता हूँ, अयोध्याके लोग मेरे वियोगसे कितने शोकाकुल हैं, यह बात आपसे छिपी नहीं है। उन्हें छोड़कर मैं स्वर्गमें कैसे जा सकता हूँ? जो मेरे प्रेमी हैं, मेरे आश्रित हैं, मेरे सेवक हैं, उन्हें छोड़कर मैं स्वर्ग-सुख नहीं चाहता। यदि वे सब मेरे साथ स्वर्गमें चलेंगे तो मैं भी उनके साथ स्वर्गमें जा सकता हूँ। यदि वे सब नरकमें जायँगे तो मैं भी नरकमें जाऊँगा।' इन्द्रने कहा—'सब लोगोंके अपने-अपने कर्म भिन्न होते हैं। उनके पाप-पुण्यका फल दूसरा है और आपके सुकृतका फल दूसरा है। सबके साथ एक ही प्रकारका भोग कैसे प्राप्त कर सकते हैं?' हरिश्चन्द्रने कहा—'महाराज! राजा केवल अपनी शक्तिसे ही राज्यका शासन

नहीं करता। वह जो कुछ भी यज्ञादि कर्म करता है, उसमें उसके सम्बन्धियोंका भी हाथ होता है। मुझसे जो कुछ हुआ है, उसमें अयोध्यावासियोंकी सहायता प्रधान रही है। मैं स्वर्गके लोभसे उनका परित्याग नहीं कर सकता। देवराज! 'इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि जो कुछ मैंने दान, जप आदि सुकर्म किये हों, उसमें सबका बराबर-बराबर हिस्सा हो जाय। यदि मैं अपने कर्मोंका फल अकेले ही भोगता तो बहुत दिनोंतक भोगता, परंतु आपकी कृपासे उनके साथ यदि मैं एक दिन भी उनका फल भोग सकूँ तो मुझे बड़ा आनन्द होगा।'*

भगवान्‌की ऐसी ही लीला थी। भक्तकी अभिलाषा भला कब अपूर्ण रह सकती है। इन्द्रने कहा—'ऐसा ही होगा।' भगवान् अन्तर्धान हो गये। इन्द्र और विश्वामित्रने पृथिवीसे लेकर इन्द्रलोकतक विमानोंकी पंक्तियाँ लगा दीं। उन लोगोंने अयोध्यामें जाकर रोहिताश्वको हरिश्चन्द्रके राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त किया और राजाके साथ वहाँके सब लोगोंको हृष्ट-पुष्ट करके सबको पत्नी, पुत्र, सेवक एवं सम्बन्धियोंके साथ स्वर्गमें ले गये। मार्गमें एक विमानसे दूसरे विमानपर चढ़ते हुए और स्वर्गकी अतुल सम्पत्ति देखते हुए प्रजाजनोंके हृदय आनन्दसे भर गये। वे हरिश्चन्द्रके आभारसे लद गये। हरिश्चन्द्र जैसे दुःखके समय

---

* शक्र भुङ्क्ते नृपो राज्यं प्रभावेण कुटुम्बिनाम्।
यजते च महायज्ञैः कर्म पौर्त्तं करोति च॥
तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम्।
उपकर्तॄन् न सन्त्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया॥
तस्माद् यन्मम देवेश किञ्चिदस्ति सुचेष्टितम्।
दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः॥
बहुकालोपभोग्यं हि फलं यन्मम कर्मणः।
तदस्तु दिनमप्येकं तैः समं त्वत्प्रसादतः॥

भगवान्‌का स्मरण करते थे, वैसे ही सुखके समय भी भगवान्‌के स्मरणमें लीन थे।

उस समय दैत्योंके आचार्य शुक्राचार्य गायन कर रहे थे कि हरिश्चन्द्रके समान राजा कोई न हुआ और न होगा। जो दुःखी पुरुष उनकी कथा सुनेगा, उसे बड़ा सुख प्राप्त होगा, स्वर्ग चाहनेवाला स्वर्ग पावेगा, पत्नी चाहनेवाला पत्नी पावेगा, पुत्र चाहनेवाला पुत्र पावेगा और राज्य चाहनेवाला राज्य पावेगा। सहनशक्तिकी महिमा अनिर्वचनीय है। दानके महान् फलका वर्णन नहीं किया जा सकता, जिससे हरिश्चन्द्रको अमरावतीकी प्राप्ति हुई, वे इन्द्र हो गये।'*

सत्यव्रतका फल केवल इन्द्रत्वकी प्राप्ति अथवा स्वर्गकी ही प्राप्ति नहीं है। उसका फल तो है भगवान्‌की अनन्त प्रसन्नता। सो हरिश्चन्द्रको प्राप्त हो गयी। इससे अधिक उनके महत्त्वका और वर्णन ही क्या किया जा सकता है? भगवान्‌की कृपासे उनके सत्यव्रतका संसारमें विस्तार हो और सब लोग सत्यप्रेमी बनें।

बोलो सत्यभगवान्‌की जय।

---

* हरिश्चन्द्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति।
यः शृणोति स्वदुःखार्तः स सुखं महदाप्नुयात्॥
स्वर्गार्थी प्राप्नुयात् स्वर्गं पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात्।
भार्यार्थी प्राप्नुयाद् भार्यां राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात्॥
अहो तितिक्षामाहात्म्यमहो दानफलं महत्।
यदागतो हरिश्चन्द्रः पुरीं चेन्द्रत्वमाप्तवान्॥

॥ श्रीहरि: ॥

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
820	भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार)	355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
050	पदरत्नाकर	356	शान्ति कैसे मिले ?
049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन	357	दु:ख क्यों होते हैं ?
058	अमृत-कण	348	नैवेद्य
332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता	337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श
333	सुख-शान्तिका मार्ग	336	नारीशिक्षा
343	मधुर	340	श्रीरामचिन्तन
056	मानव-जीवनका लक्ष्य	338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन
331	सुखी बननेके उपाय	345	भवरोगकी रामबाण दवा
334	व्यवहार और परमार्थ	346	सुखी बनो
514	दु:खमें भगवत्कृपा	341	प्रेमदर्शन
386	सत्संग-सुधा	358	कल्याण-कुंज
342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल	359	भगवान्‌की पूजाके पुष्प
347	तुलसीदल	360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं
339	सत्संगके बिखरे मोती	361	मानव-कल्याणके साधन
349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति	362	दिव्य सुखकी सरिता
350	साधकोंका सहारा	363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ
351	भगवच्चर्चा	364	परमार्थकी मन्दाकिनी
352	पूर्ण समर्पण	366	मानव-धर्म
353	लोक-परलोक-सुधार	526	महाभाव-कल्लोलिनी
354	आनन्दका स्वरूप	367	दैनिक कल्याण-सूत्र
		369	गोपीप्रेम

कोड	पुस्तक
368	प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष
370	श्रीभगवन्नाम
373	कल्याणकारी आचरण
374	साधन-पथ—सचित्र
375	वर्तमान शिक्षा
376	स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी
377	मनको वश करनेके कुछ उपाय
378	आनन्दकी लहरें
380	ब्रह्मचर्य

कोड	पुस्तक
381	दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य
379	गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य
382	सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन
344	उपनिषदोंके चौदह रत्न
371	राधा-माधव-रससुधा-(षोडशगीत) सटीक
384	विवाहमें दहेज—
809	दिव्य संदेश...........

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कुछ साधन-भजनकी पुस्तकें

कोड	पुस्तक
052	स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद
819	श्रीविष्णुसहस्त्रनाम—शांकरभाष्य
207	रामस्तवराज—(सटीक)
211	आदित्यहृदयस्तोत्रम्
224	श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र
231	रामरक्षास्तोत्रम्
1594	सहस्त्रनामस्तोत्रसंग्रह
715	महामन्त्रराजस्तोत्रम्
054	भजन-संग्रह
140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली
142	चेतावनी-पद-संग्रह
144	भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह
1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह
1214	मानस-स्तुति-संग्रह
1344	सचित्र-आरती-संग्रह
1591	आरती-संग्रह—मोटा टाइप
208	सीतारामभजन
221	हरेरामभजन—दो माला (गुटका)
225	गजेन्द्रमोक्ष
1505	भीष्मस्तवराज
699	गंगालहरी
1094	हनुमानचालीसा—भावार्थसहित
228	शिवचालीसा
232	श्रीरामगीता
851	दुर्गाचालीसा
236	साधकदैनन्दिनी